अनुभव

7

आने लगी हैं तितलियाँ स्कूल में

अक्षय कुमार दीक्षित*

उत्साह और उमंग से भरपूर बच्चों को विद्यालय में पढ़ाई के साथ-साथ अन्य गतिविधियों में भी शामिल किया जाए, तो शिक्षक के साथ उनका एक आत्मीय रिश्ता कायम हो जाता है साथ ही विद्यालय की स्थिति में भी सुधार लाया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक उचित ढंग से कार्य-योजना बनाए, बच्चों का विश्वास जीते और बच्चों की क्षमता पर विश्वास रखें। इस प्रकार के अनुभव पर यह लेख आधारित है।

मेरा विद्यालय एक महानगर के शहरीकृत गाँव में स्थित है जिसमें वर्षों पहले खेतीबाड़ी बंद हो चुकी है। विद्यालय में अन्य सरकारी स्कूलों की तरह ज़मीन तो है, पर संसाधनों के लिए संघर्ष करना पड़ता है। ये कहानी है ऐसे ही छोटे-बड़े संघर्षों और चुनौतियों पर विजय प्राप्त करने की।

जब मेरा तबादला इस स्कूल में हुआ, मेरा ध्यान बेकार पड़ी ज़मीन की ओर गया। ज़मीन दीमक, झाड़ियों और पुरानी इमारत के मलबे से भरी थी। बच्चे वहाँ खेल भी नहीं सकते थे क्योंकि वहाँ बरसात में साँप-बिच्छू निकलने का खतरा भी रहता था। उसी समय मेरे मन में एक सपने ने जन्म लिया– क्यों न यहाँ बागवानी या खेती करवाई जाए! सपना छोटा-सा था, पर इसे साकार करना उतना ही कठिन था। उस ज़मीन को खेती लायक बनाने में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाना पड़ा तथा वर्षों का इंतज़ार करना पड़ा।

मैंने तब तक इंतज़ार किया जब तक मेरी कक्षा के बच्चे खेती-बाड़ी की बारीकियाँ और ज़िम्मेवारियाँ समझने लायक बड़े नहीं हो गए। मेरे पास केवल मेरा संकल्प और मेरी बाल-सेना ही तो थी, जिसके दम पर मैं अपने सपने को साकार करने की कल्पना कर रहा था। जब मेरे बच्चे तीसरी कक्षा में पहुँच गए, तब जाकर मैंने इस कार्य में बच्चों का सहयोग लेने की शुरुआत की। पेड़-पौधों से प्यार और उनकी देखभाल की प्रेरणा तो मैं पहली कक्षा से दे रहा था, अब उससे आगे बढ़ने का समय था

*सी-633, जे. वी. टी. एस. गार्डन, छत्तरपुर एक्सटेंशन नयी दिल्ली - 110074

एक दिन उचित अवसर देखकर मैंने बच्चों का मन टटोलना चाहा। मैंने पूछा, "आपमें से कौन-कौन बच्चे खेतों में काम कर चुके हैं?" इस सवाल को सुनते ही अनेक हाथ खड़े हो गए। अनेक बच्चे अपने गाँव में दादा-दादी या चाचा-चाची को खेतों में काम करते देख चुके थे। कभी-कभी उनकी मदद भी करते थे। वे उत्साह से भरकर अपने अनुभव सुनाने लगे। उनके अनुभवों को सुनकर मुझे लगा कि वे खेती-बाड़ी के बारे में मुझसे ज़्यादा जानते हैं क्योंकि मेरा लालन-पालन पूरी तरह शहर में हुआ था और मुझे खेती-बाड़ी को समझने का कभी अवसर ही नहीं मिल सका। मैंने पूछा, "क्या हम अपने स्कूल में खेती कर सकते हैं?" बच्चों को प्रतिक्रिया देने में केवल दो पल लगे। सब बच्चे खेती की बात से ही इतने उत्साहित थे मानो अभी खेत तैयार कर डालेंगे। वे तरह-तरह के सुझाव देने लगे, "सर, उधर कोने वाली ज़मीन बेकार पड़ी है, हम वहीं खेती कर लेंगे।" "पर वहाँ तो बहुत मलबा पड़ा है।" मैंने शंका ज़ाहिर की। "कोई बात नहीं सर! मलबा हम चुटकियों में हटा देंगे।''

"पर उगाएँगे क्या"?

"मिर्ची उगाएँगे, आलू, प्याज, पालक, लहसुन, धनिया, लौकी, मूली, मेथी..." तरह-तरह के नाम सामने आने लगे।

यह तो स्पष्ट था कि बच्चे अब खेत बनाकर ही दम लेंगे पर अब समस्या संसाधनों की थी स्कूल में एक टूटा फ़ावड़ा, एक खुरपी, दो तसले और एक बाल्टी थी। इन चीज़ों के सहारे बंजर ज़मीन से मलबा हटाना और उसे खेती लायक बनाना असंभव-सी बात थी। मैंने एक फ़ावड़ा और खरीद लिया। संयोग से विद्यालय के एक कर्मचारी के बेटे के पास से सामान ढोने वाली छोटी-सी रिक्शागाड़ी मिल गई। मलबे को दूर ले जाकर डालने के लिए उसका सहयोग भी मिल गया फिर हमने शुरू किया अपना अंतहीन लगने वाला सफ़र।

इस कार्य के लिए स्कूल के दैनिक क्रियाकलापों के बीच ही समय निकलना था इसलिए कभी आधा घंटा, कभी एक घंटा तो कभी दो घंटे हम मलबा उठाने का काम करते। प्रत्येक छोटा-बड़ा बच्चा अपनी क्षमता के अनुसार कंकड़-पत्थर और मिट्टी उठाता।

उनकी लगन के आगे प्रत्येक कठिनाई छू-मंतर हो जाती। धीरे-धीरे मैदान साफ़ होने लगा। मेरी कक्षा के बच्चों का उत्साह तथा उनकी मेहनत का परिणाम देखकर अन्य कक्षाओं के बच्चे भी आकर काम करने की इच्छा जाहिर करने लगे। कुछ समय बाद उनके अध्यापक भी आ गए और सब दिल खोलकर इस कार्य में अपना योगदान देने लगे। सब मिलकर बच्चों की सुरक्षा का ध्यान रखते, उनको मार्गदर्शन देते, स्वयं भी फ़ावड़ा हाथ में लेकर खुदाई करते तथा एक-दूसरे को प्रोत्साहित करते। मेरा विश्वास इस बात में और अधिक दृढ़ हो गया कि बच्चे पत्थरों को भी मोम बना सकते हैं।

मैदान को खेती लायक बनाने की कोशिश में काफ़ी समय लगा। जब ज़मीन लगभग तैयार हो गई, हमने निश्चय किया कि वर्षा के मौसम से पहले हम बुवाई का कार्य प्रारंभ करेंगे। परंतु

वर्षा ऋतु के आने में काफ़ी समय शेष था। फिर वार्षिक परीक्षाएँ प्रारंभ हो गई और बच्चे चौथी कक्षा में पहुँच गए।

नयी कक्षा में आकर हमने फिर से अपने भावी खेत को थोड़ा-थोड़ा समय देना प्रारंभ किया मलबा, झाड़-झंकार पहले ही हटाए जा चुके थे, पर मिट्टी को अच्छी तरह साफ़ कर कंकड़-पत्थर निकालने थे।

बच्चे फिर दुगुने उत्साह से जुट गए। उनका सपना सच जो होने जा रहा था। सब अपने खेत में अपनी सब्ज़ियाँ उगाने और उन्हें खाने की बाट जोह रहे थे।

इधर-उधर बेकार पड़ी ईंटों को क्रम से लगाकर हमने अपने खेत की सीमा निर्धारित करनी शुरू कर दी। बच्चे टोलियों में व्यवस्थित रूप से काम करते। कुछ बच्चे पत्थर चुनकर ढेरी बनाते, कुछ उन्हें दूर डालकर आते, कुछ बच्चे ईंटे लाते, कुछ उन्हें जमाते। आखिरकार ज़मीन का एक छोटा-सा टुकड़ा खेती के लिए पूरी तरह तैयार लगने लगा।

"कल हम बुवाई करेंगे।" मेरी यह बात सुनते ही बच्चों ने गिनवाना शुरू कर दिया कि वे क्या-क्या लगाएँगे? "मैं मिर्च उगाऊँगी। मेरी माँ घर पर ही मिर्च उगाती है। मिर्च को सुखाकर उसके बीज मिट्टी में फैला दो तो वो अपने आप उग जाते हैं" भारती ने बताया। भारती भी मेरी कक्षा में पढ़ती है। "मैं आलू लाऊँगा। आलू की आँख आई हो तो उसे काटकर ज़मीन में लगा दो। वह आलू का पौधा तो रखे-रखे ही निकल आता है" सुमित ने बताया। "मैं धनिया लगाऊँगी। साबुत धनिया थोड़ा तोड़कर मिट्टी में फैला दो तो वह जल्दी उग जाता है" नरेश ने बताया।

अगले दिन प्रत्येक बच्चा उगाने के लिए कुछ-न-कुछ लाया था। मैं खेती-बाड़ी के बारे में बच्चों से बहुमूल्य सबक सीख रहा था। जब बच्चे अपनी पहली फ़सल उगाने पहुँचे, कुछ अन्य अध्यापिकाओं ने भी उनका मार्गदर्शन किया, पर लगभग सभी कार्य बच्चों ने अपने आप स्वतंत्र रूप से ही किए। एक कतार में आलू लगाने थे। किसी ने सुझाव दिया कि मिट्टी की मुंडेर-सी बनाकर उसमें आलू के टुकड़े बोने चाहिए। बच्चों ने ऐसा ही किया। एक कतार प्याज़ की, एक लहसुन की और एक आलू की लगा दी गई। बच्चे समझते थे कि अब नियमित रूप से पानी देना होगा और बेकार के पौधे (खरपतवार) भी निकालने होंगे।

इधर कुछ बच्चे बुवाई कर रहे थे, उधार कुछ बच्चों ने ज़मीन का अगला टुकड़ा तैयार कर दिया था। धीरे-धीरे हम अपने खेत का आकार बढ़ाते रहे और रोज़ कुछ-न-कुछ बोते रहे। एक अध्यापिका ने प्रस्ताव रखा कि उनके घर के पास गोबर से बनी खाद मिल जाती है। उसे मँगवा लिया जाए। दो रिक्शा भरकर खाद भी आ गई। हमारे स्कूल में पेड़ों के गिरे पत्तों से बनी खाद वर्षों से जमा होती रही थी। वह उपजाऊ मिट्टी भी हमने उठवा ली। इस तरह हमने अपने खेतों में भरपूर पोषण का पक्का इंतेज़ाम कर लिया।

इस पूरे कार्य के दौरान बच्चे आपस में सहयोग कर रहे थे, उनके आत्मविश्वास में वृद्धि हो रही थी, उनका परिवेश के प्रति

नज़रिया बदल रहा था और वे अधिक संवेदनशील बन रहे थे। 'हम भी सृजन कर सकते हैं!' इस विश्वास का उजाला उनके चेहरों पर देखा जा सकता था। साथ ही एक निश्छल-सी उम्मीद, कि हम अपनी उगाई सब्ज़ी खा सकेंगे।

अलग-अलग पौधों की ज़रूरतें अलग होती हैं और उनकी देखभाल के तरीके भी, यह बात भी हमें समझ आ रही थी। जो आलू हमने मिट्टी की मुंडेर बनाकर बोए थे, उनमें से पौधे निकले ही नहीं। बच्चों ने इस बार अपनी समझ से काम लिया और अतिरिक्त मिट्टी हटा दी। कुछ ही दिनों में पौधे नज़र आने लगे। दूसरी ओर, प्याज़ का पौधा तो निकल आया, पर पता चला कि ज़मीन में प्याज़ नहीं बढ़ेगी। हमें पौधे से ही संतोष करना पड़ा। जहाँ धूप कम मिल रही थी, वहाँ पौधे कम बढ़ पा रहे थे। इस कारण हमने उधर ऐसे पौधे लगाने की योजना बनाई जिन्हें कम धूप की ज़रूरत पड़ती है। कुछ झाड़ियों आदि की छँटाई भी करनी पड़ी।

अब तो पूरी चार-दिवारी के साथ-साथ हमारे खेत फैल चुके थे। हम अध्यापकों ने कुछ पैसे जमा करके पालक, लौकी, बैंगन, मूली, मटर आदि के बीज़ मँगवा लिए। उन्हें भी बो दिया गया। बच्चे सिंचाई का भी पूरा ध्यान रखते। शनिवार को अधिक देर तक सिंचाई करते ताकि रविवार की कमी को भी पूरा किया जा सके। सोमवार के स्कूल में आते ही सबसे पहले पौधों का हालचाल पूछने उनके पास जाते।

पौधों के कारण स्कूल की हालत ही बदल गई थी। जहाँ मलबा बिखरा पड़ा था, वहाँ सुंदर तथा व्यवस्थित पौधे लगे थे। इक्का-दुक्का नासमझ अभिभावकों का शिकायती स्वर भी बंद हो गया था। अज्ञानतावश वे भी किताबी पढ़ाई-लिखाई को ही वास्तविक शिक्षण समझते थे। उन्हें चिंता थी कि बच्चों के समय का उचित इस्तेमाल नहीं हो रहा है। अब तो वे भी क्यारियों के पास आ-आकर बच्चों की मेहनत का चमत्कार देखने लगे।

कुछ बच्चों ने पक्षियों और गिलहरियों को डराने के लिए बिजूका भी बना लिया। अपने खेतों को कुत्तों से भी बचाना था जो नरम और ठंडी मिट्टी में बैठने की लालच में जहाँ-तहाँ अपना आरामदायक गड्ढा बना लिया करते थे। अनेक बार हमारे औज़ार कम पड़े, क्षतिग्रस्त हुए, अनेक बार हमें काम रोकना पड़ा परंतु अब हमारा सपना सच हो गया था।

फ़सल तैयार होने लगी थी। एक दिन स्कूल आए तो देखा कि किसी ने आलू के पौधे उखाड़कर आलू निकाल लिए हैं और पौधों को फिर से लगा दिया है ताकि पता न चले। पर बच्चों की पैनी नज़र से कुछ छिपता है भला! अब मुझे चिंता हुई कि बच्चों की मेहनत कहीं व्यर्थ न चली जाए। मैंने बच्चों से कहा कि वे बचे हुए आलू तथा बाकी फ़सल इकट्ठी कर लें। सारी उपज़ बच्चों में बाँट दी गयी, बच्चे अपनी मेहनत को खज़ाने की तरह सहेजकर अपने-अपने घर में ले गए। अगले दिन मैंने उनसे पूछा, ''जब आप अपनी उगाई सब्ज़ियाँ अपने घर ले गए तो मम्मी-पापा ने क्या कहा?''

"बहुत खुश हुए।" सब बच्चे एक स्वर में बोले।

"मेरा धनिया मम्मी ने रात के खाने में डाला।"

"मेरी मम्मी ने पापा को बताया कि ये आलू की सब्ज़ी मेरे उगाए आलुओं से बनी है तो पापा हैरान रह गए"

मेरे पापा ने कहा – "ओहो! अब पता चला कि ये आलू क्यों ले गई थी स्कूल में!"

सब बच्चे उत्साहित स्वर में बता रहे थे।

मुझे महसूस हुआ कि हमारे खेतों ने स्कूल और अभिभावकों के बीच की दूरी को समाप्त कर दिया है।

प्याज़ के पत्ते, मेथी, पालक, सरसों और मूली का स्वाद हमने स्कूल में भी लिया और घर में भी। पालक को बार-बार काटते पर फिर-फिर उग आता। बच्चों ने ही नहीं, बल्कि अध्यापकों ने भी उसके स्वाद का लुत्फ लिया।

वर्तमान स्थिति – इस वर्ष बच्चों ने पिछले वर्ष के मुकाबले दुगुनी ज़मीन पर फूलों के पौधे लगाए हैं। दीवारों पर गेरू और खड़िया से पारंपरिक चित्र बनाए हैं। आजकल फूलों के इर्द-गिर्द बच्चे तो खेलते ही हैं, तितलियाँ भी स्कूल में आने लगी हैं।

❑❑❑